वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति

(भाग- 2)

SNKT2006 - संस्कृतवाङ्मये स्त्री-विमर्शः

एम० ए० द्वितीयसत्रम्

डॉ० विश्वेशवाग्मी

सहायकाचार्यः, संस्कृतविभागः

महात्मा-गाँधी-केन्द्रीय-विश्वविद्यालयः, बिहारः

vishujnu@gmail.com

प्रथम भाग में चर्चित विषय-

- आधुनिक भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति –
  - भारत में स्त्रियों की दशा : एक सर्वेक्षण
    - कन्या भ्रूण हत्या
    - बालविवाह
    - शिक्षा के अधिकार से वंचित
    - परिवार में स्त्री की दयनीय स्थिति
- वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति -
  - कन्या के रूप में स्त्री –
  - विवाह संस्कार -
    - विवाह के योग्य आयु-
    - स्वयंवर विवाह-
    - विधवा विवाह-

प्रस्तुत द्वितीय भाग में चर्चित विषय-

- धर्मपत्नी के रूप में स्त्री की स्थिति-
  - पति द्वारा सौभाग्य की कामना
  - दाम्पत्य प्रेम एवं गृहपत्नी (साम्राज्ञी) के रूप में स्त्री
  - यज्ञ की अधिकारिणी के रूप में स्त्री
- माता के रूप में स्त्री की स्थिति –
- समाज में स्त्री का गौरव एवं अधिकार –
- नारी की हीन स्थिति विषयक वैदिक मन्त्रों की परीक्षा
  - प्रथम स्थल की परीक्षा एवं समाधान -
  - द्वितीय स्थल की परीक्षा एवं समाधान -

धर्मपत्नी के रूप में स्त्री की स्थिति-

- पिछले प्रस्तुतिकरण में हमने देखा कि वैदिक संस्कृति में विवाह दो व्यक्तियों का मिलनमात्र अथवा पुरुष की आवश्यकताओं की पूर्त्ति नहीं है अपितु स्त्री एवं पुरुष के जीवन को सच्चे अर्थों में पूर्णता प्रदान करने का संस्कार है। दो जीवों के अनन्त जन्म के संस्कारित सहजीवन की विचारप्रणाली वैदिक विवाह के मूल में विद्यमान है।
- आधुनिक प्रगतिशील मानस ने यदि पूर्ण मनोयोग से इस सिद्धान्त का सूक्ष्मेक्षिकया निरीक्षण कर लिया तो निश्चय ही आजकल के जडवाद में व्याप्त उस विकृत दृष्टिकोण के प्रति उसके अन्दर तिरस्कार के भाव पैदा हो जाएँगे, जिसमें स्त्री को केवल स्वतन्त्रता के नाम पर भोग्य वस्तु मात्र बना दिया गया है। प्रचार माध्यमों से लेकर चलचित्रों तक स्त्री शरीर का निर्लज्ज प्रदर्शन किया जाता है किन्तु साथ ही प्रथमदृष्ट्या हृदय को स्पन्दित करने वाली स्त्री स्वातन्त्र्य और औदार्य की कल्पनाओं का पाखण्ड किया जाता है।

पति द्वारा सौभाग्य की कामना-

- पाणिग्रहण संस्कार के समय पति के मुख से ऋग्वेद के ऋषि ने जो वाक्य कहलवाएँ हैं इनके द्वारा वैदिक समाज में गृहजीवन, सौमंगल्य एवं दाम्पत्यजीवन सम्बन्धी आदर्श उत्कृष्ट रीति से व्यक्त होते हैं-

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।

भगो अर्यमा सविता पुरन्धिः मह्यं त्वादुः गार्हपत्याय देवाः ॥ अथर्व० १४/१/५०

मैं तुम्हारे और अपने सौभाग्य के लिए तुम्हारा हाथ पकडता हूँ, जिससे तुम मुझ पति के साथ रहती हुई दीर्घ जीवन को प्राप्त करो। भाग्यमति, अर्यमा, पुरन्धी आदि समस्त दिव्य विभूतियों ने तुम्हे मेरे हाथों में इस्लिए सौंपा है कि मै गृहस्थ धर्म का पालन कर सकूँ।

भगस्ते हस्तमग्रहीत्, सविता हस्तमग्रहीत्।

पत्नी त्वमसि धर्मणा, अहं गृहपतिस्तव ॥ अथर्व० १४/१/५१

हे देवी ! ऐश्वर्यवान् बनकर मैंने तुम्हारा हाथ पकडा है, धर्ममार्ग में प्रेरक बनकर मैंने तुम्हारा हाथ पकडा है। तुम धर्म से मेरी पत्नी हो, मैं तुम्हारा गृहपति हूँ।

दाम्पत्य प्रेम एवं गृहपत्नी (साम्राज्ञी) के रूप में स्त्री-

- “जायेदस्तम्” ‘हे इन्द्र ! जाया ही घर है । ऋक्-संहिता ३/५३/४
- “द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः समानं वृक्षं प रिषस्वजाते”- ऋक्-संहिता १/१६४/२०
- “चक्रवाकेव दम्पती” -अथर्व० १४/२/६४
- “समञ्जन्तु विश्वे देवा:, समापो हृदयानि नौ” ऋ० १०/८५/४७
- “साम्राज्ञी श्वशुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रवां भव”- ऋ० १०/८५/४६
- “इषे राये रमस्व सहसे, द्युम्न ऊर्जे अपत्याय ।
- सम्राडसि स्वराडसि, सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥”- यजु० १३/३५

हे देवी ! तुम ज्ञान-विज्ञान के लिए, धन के लिए, बल के लिए और साहस के लिए, पराक्रम के लिए, सन्तान के लिए पति-गृह में रमो । तुम साम्राज्ञी हो, तुम स्वकीय विद्या, बल आदि से देदीप्यमान हो । ऋक्-सामरूप तथा मन-वाणीरूप प्रवाह तुम्हारी रक्षा करें।

यज्ञ की अधिकारिणी के रूप में स्त्री -

- वेदों में नारी के अधिकार एवं कर्तव्यों के विषय में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है किन्तु हम अब जिस सबसे विवादित विषय पर चर्चा करेंगे वह है- स्त्री को वेद का अध्ययन अथवा श्रवण का अधिकार था अथवा नहीं ? मध्यकाल में ऐसी कुरीतियाँ भी हमारे समाज में उत्पन्न हुई जहाँ स्त्री को वेद के श्रवण से भी वंचित रक्खा गया; किन्तु जब हम वेदों का अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि न केवल स्त्रियों ने मन्त्रों की रचना की अपितु यज्ञ में उनका स्थान प्रथम माना गया-

“ आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे” अथर्व० १२/२/३१

- एक अन्य मन्त्र में स्त्री को हव्य एवं घृत के साथ प्रातः सायं यज्ञ करने का उपदेश दिया गया है-

उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मति घृताची ।

उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः॥ अथर्व० १४/१/५१

माता के रूप में स्त्री की स्थिति-

- वैदिक संहिताओं से लेकर प्रायशः सभी शास्त्रों में माता को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। वेदों में माता की प्रतिष्ठा अपनी पराकाष्ठा पर थी। कन्या के विवाह में परिवार में सबसे ज्यादा माता का ही निर्णय मान्य था।
- महर्षि यास्क – माता निर्माता भवति
- "मीमांस्यते पूज्यते या सा माता"
- ऋग्वेद में परमात्मा को पिता की अपेक्षा माता कहना अधिक उचित माना गया है- ऋ० ९/९८/१२
- "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"- अथर्व० १२/१
- नदियों को जीवनदायिनी माता के रूप में वर्णित किया गया है। ऋ० १०/६४/९
- वेद को भी माता के रूप में वर्णित किया गया है- "स्तुता मया वरदा वेदमाता"- अथर्व० १९/७१/१

समाज में स्त्री का गौरव एवं अधिकार

- वेदों में नारी ब्रह्मा शब्द से अभिहित किया गया है- "स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ" ऋ० ८/३३/१९ जिस प्रकार ब्रह्मा को ज्ञान का अधिष्ठाता एवं यज्ञों में सर्वोच्च स्थान पर अभिषिक्त कर यज्ञ सञ्चालनकर्त्ता माना गया है, उसी प्रकार वैदिक ऋषि की दृष्टि में स्त्री समाज में ज्ञान-विज्ञान का आधार है।
- ऋग्वेद के एक सूक्त में शचि (इन्द्राणी) का गौरव वर्णित है। इसमें शचि का कथन है कि- मैं समाज में अग्रगण्य हूँ, उच्चकोटी की वक्ता हूँ, विद्वानों में मूर्धन्य हूँ तथा मेरा पति भी मेरे अनुसार ही आचरण करता है-

  अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी।

  ममेदनु क्रतुं पतिः, सेहानाया उपाचरेत्॥ ऋ० १०/१५९/२

- वागम्भृणी का वाक्-सूक्त (ऋ० १०/१२५) तो इस तरह की भावनाओं एवं स्त्री आदर्शों का कोष है-

  अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।

  तां मा देवाः व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेषयन्तीम्॥

  अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।

  यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥

- ब्राह्मण ग्रन्थों में भी नारी का गौरव वर्णित है-

“ स्त्री सावित्री” जैमिनीय उप० ब्रा० ४/२७

“अर्धो वा एष आत्मनः, यत् पत्नी” तैत्ति० ब्रा० ३/३/३/५

“ श्रिया वा एतद् रूपं यत् पत्न्यः” तैत्ति० ब्रा० ३/९/४/७

“ अयज्ञो वा एषः । योऽपत्नीकः” तैत्ति० ब्रा० २/२/२/६

- पारस्कर गृह्यसूत्र में भी स्त्रियों की गौरवमयी गाथा का वर्णन है-

“तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः” पार० गृ० १/७/२

- नारी के शील की रक्षा को राष्ट्रीय उत्तरदायित्त्व बताया गया है। जहाँ नारी के चरित्र की पूर्ण सुरक्षा होती है, वही राष्ट्र सुरक्षित कहा जाता है- अथर्व० ५/१७/३
- स्त्री का अपहरण राष्ट्र के लिए कलंक- अथर्व० ५/१७/६

नारी की हीन स्थिति विषयक वैदिक मन्त्रों की परीक्षा

- वैदिक समाज में नारी की हीन स्थिति को सिद्ध करने के लिए पूर्वपक्ष की ओर से ऋग्वेद के प्रायः दो मन्त्र प्रस्तुत किए जाते हैं। वास्तव में यदि हम उन दो मन्त्रों की परीक्षा करेंगे तो निश्चय ही सत्यासत्य की परीक्षा सम्भव है-

प्रथम मन्त्र

इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्, स्त्रिया अशास्यं मनः।
उतो अह क्रतुं रघुम् ॥ ऋ० ८/३३/१७

इस मन्त्र का अर्थ प्रायशः भाष्यकारों द्वारा यह किया जाता है कि-

"स्वयं इन्द्र ने कहा है कि स्त्री के मन पर शासन नहीं किया जा सकता, स्त्रियों की बुद्धि तुच्छ होती है"

सायणाचार्य को भी यही अर्थ अभिप्रेत है

किन्तु प्रश्न उठता है कि जो ऋषि स्वयं कन्या को 'पुरन्धि' शब्द से अभिहित करता है वह स्त्रियों की बुद्धि के विषय में ऐसा क्यों कहेगा। अतः मन्त्र के वास्तविक अर्थ को परीक्षा के द्वारा ही जाना जा सकता है।

समाधान- "इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्, स्त्रिया अशास्यं मनः। उतो अह क्रतुं रघुम् ॥"

- वैदिक कोश निघण्टु में 'क्रतु' शब्द का अर्थ= कर्म तथा बुद्धि।
- रघु शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य तो क्या लौकिक साहित्य में भी तुच्छ अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ। यदि रघु शब्द का अर्थ तुच्छ होता जैसा कि तथाकथित भाष्यकारों ने उपर्युक्त मन्त्र में किया है तो इक्ष्वाकु वंश के परम प्रतापी राजा का नाम रघु क्योंकर होता जिनके नाम पर वंश का नाम ही 'रघुवंश' पड गया।
- पाणिनीय धातुपाठ में एक धातु है 'लघिँ गतौ' (१०७) जिसका अर्थ है "जाना"।
- उणादि सूत्र "लङ्घि-बंह्योर्नलोपश्च" (१.३०) से 'लघिँ गतौ' धातु से 'लघु' शब्द बनता है। "लङ्घते इति लघुः" अर्थात् "जो (शीघ्र) जाता/चलता है वह लघु है"। वैसे 'लघु' का प्रसिद्ध अर्थ "छोटा" है, परन्तु मूल अर्थ "शीघ्रगामी" है।

समाधान- “इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्, स्त्रिया अशास्यं मनः। उतो अह क्रतुं रघुम् ॥”

इसी कारण से वाल्मीकीय रामायण में अनेक बार श्रीराम और लक्ष्मण के लिए ‘लघुविक्रम’ शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा बालकाण्ड में वाल्मीकि श्रीराम और लक्ष्मण के लिए कहते हैं-

“तीरं दक्षिणमासाद्य जग्मतुर्लघुविक्रमौ” (१.२४.११)। यहाँ ‘लघु’ का अर्थ छोटा’ नहीं अपितु ‘शीघ्र’ ही है, जैसा शिरोमणि टीकाकार ने कहा है, “लघुविक्रमौ शीघ्रपादविक्षेपौ”। ‘विक्रम’ अर्थात् चरण का विक्षेप (डग) और ‘लघु’ अर्थात् शीघ्र अत एव ‘लघुविक्रम’ अर्थात् “शीघ्र डग भरने वाला”। इस प्रकार ‘लघु’ का अर्थ हुआ शीघ्रगामी।

समाधान- “इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्, स्त्रिया अशास्यं मनः। उतो अह क्रतुं रघुम् ॥”

- अब आइए पतञ्जलि कृत ‘महाभाष्य’ पर । इसमें कात्यायन का एक वार्तिक प्राप्त होता है “वालमूललघ्वलमङ्गुलीनां वा लो रमापद्यत इति वक्तव्यम्” (८.२.१८)। अर्थात् ‘वाल’, ‘मूल’, ‘लघु’, ‘अलम्’, और ‘अङ्गुलि’ इन शब्दों के ‘ल’ को विकल्प से ‘र’ होता है। अर्थात् ‘वाल’ का ‘वार’, ‘मूल’ का ‘मूर’, ‘लघु’ का ‘रघु’, ‘अलम्’ का ‘अरम्’, और ‘अङ्गुलि’ का ‘अङ्गुरि’ रूप विकल्प से होते हैं।इस प्रकार ‘रघु’ शब्द ‘लघु’ का ही वैकल्पिक रूप है। अतः ‘रघु’ का भी अर्थ हुआ “शीघ्रगामी”।
- ‘रघुवंश’ में कालिदास ने ‘गमन’ अर्थ की धातु से ही ‘रघु’ शब्द की उत्पत्ति बताई है। कालिदास कहते हैं (रघुवंशमहाकाव्यम् ३.२१) — श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भकस्तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः। अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थविच्चकार नाम्ना रघुमात्मसम्भवम्॥ अर्थात् यह बालक श्रुत (शास्त्र) के अन्त तक जाए और युद्ध में शत्रुओं के अन्त तक जाए (अर्थात् शत्रुओं का अन्त करे) । यह सोचकर अर्थ को जाननेवाले राजा दिलीप ने धातु का ‘गमन’ अर्थ जानकर अपने पुत्र का नाम ‘रघु’ रखा।”
- इस प्रकार गमनार्थक ‘लघिँ गतौ’ (१०७) धातु से निष्पन्न ‘रघु’ नाम का अर्थ है- शीघ्रगामी, शास्त्र के अन्त तक जानेवाला, और शत्रुओं को अन्त तक ले जानेवाला।

समाधान- "इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्, स्त्रिया अशास्यं मनः। उतो अह क्रतुं रघुम् ॥"

- इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्रांश- 'क्रतुं रघुम्' का अर्थ हुआ = शास्त्रों में गति रखने वाली तीव्र बुद्धि
- इस परिप्रेक्ष्य में मन्त्रांश "अशास्यं मनः" का अर्थ हुआ कि स्त्रियों के मन पर अंकुश नहीं रक्खा जाना चाहिए; पुरुष के समान उसे भी विचारों की स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए।
- इस रूप में मन्त्र का अर्थ निम्नलिखित रूप से सुनिश्चित होता है-

इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्, स्त्रिया अशास्यं मनः।
उतो अह क्रतुं रघुम् ॥ ऋ० ८/३३/१७

" स्वयं इन्द्र ने कहा है कि स्त्री के मन पर शासन या अंकुश नहीं लगाना चाहिए; पुरुष के समान उसे भी विचारों की स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। उसके अन्दर भी जो वैचारिक शक्ति है उसका परिवार, समाज और राष्ट्र को लाभ मिलना चाहिए, क्योंकि नारी की बुद्धि एवं क्रियाशीलता अत्यधिक तीव्र होती है"

नारी की हीन स्थिति विषयक द्वितीय स्थल का समाधान

- नारी को वेद की दृष्टि में हीन सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किए जाने वाला द्वितीय स्थल-

द्वितीय मन्त्र

" न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता " ऋ० १०/९५/१५

अर्थात् स्त्रियों से मित्रता करना अच्छा नहीं होता, उनकी मित्रता लक्कडबग्घे के हृदय के समान क्रूर होती है।

प्रथम दृष्टि में यह मन्त्रांश स्त्री निन्दा परक ही प्रतीत होता है, परन्तु यदि प्रकरण को देंखे तो समाधान हो जाता है। यह मन्त्र पुरुरवा ऊर्वशी सम्वाद का है। पुरुरवा अत्यधिक कामासक्त है, उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए उर्वशी ने यह वचन कहा है।

सन्दर्भ-

- ऋग्वेद संहिता, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, १९६५
- यजुर्वेद, दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९५७
- सामवेद, दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९६५
- अथर्ववेद, दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९५८
- वैदिक नारी, रामनाथ वेदालंकार, समर्पण शोध संस्थान, साहिबाबाद, गाजियाबाद, २०००
- वैदिक संहिताओं में नारी, डॉ० मालती शर्मा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९९०
- वेदों में नारी, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर भदोही, उ. प्र., २००५
- धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ० पाण्डुरंग वामन काणे, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, १९९२
- The Position of Women in Hindu Civiligation, A.S. Altekar, Banaras, 1938.
- Women in Ancient India, Clarisse Bader, Chowkhamba Sanskrit Series Varanasi, 1964.

धन्यवादः